International Online Multidisciplinary Journal
Review of Research
Save Tree. Save Paper. Save World
ISSN No : 2249-894X
Impact Factor 2.1002 (UIF) [Yr.2013]
3.1402 (UIF) [Yr.2014]

ISSN 2249-894X Impact Factor : 3.1402 (UIF) Volume - 5 | Issue - 4 | Jan - 2016

# यो जस मीरा बाई गावै

डॉ. रिंपल 'सदा'
एस. प्रोफेसर , माता गंगा गर्ल्ज़ कालेज , तरनतारन.

भारत में मध्ययुग में भक्ति आन्दोलन की अध्यात्मिक प्रेरणा ने जिन भक्त–कवियों को जन्म दिया, उनमें राजस्थान की मीराँबाई का विशेष स्थान है। उनके पदों से गुजरात, राजस्थान, पंजाब, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार और बंगाल तक हर घर परिचित है।

मीरा की बाणी को विरहा की वाणी, प्रेम और पीड़ा की वाणी कहा जाता है, यद्यपि मीरा के पदों में प्रेम और विरह का स्वर सर्वदा आच्छादित है, तथापि अन्य विषयों पर उनका स्वर मुखरित हुआ है। मीरा के पदों में मनुष्य जन्म की अनिवार्यता, सतगुरू की खोज, सतगुरू की प्राप्ति, सतगुरू की शरण, नाम स्मरण, सत्संग, प्रभु से प्रेम, प्रेम में प्रतीक्षा, शरण, विरह–व्यथा, प्रेम की पराकाष्ठा, उलाहने, ईश्वरीय प्राप्ति में बाहय साधनों का खण्डन आदि विषय भी मिलते हैं।

भाषा शैली के दृष्टिकोण से मीरां के पदों मं विभिन्न भाषाओं के शब्दों और मुहावरों का प्रयोग मिलता है। मीरा की वाणी में हमें हिन्दी और गुजराती भाषाओं के अतिरिक्त ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मारवाड़ी, मैथिली, संस्कृत, अरबी, फारसी और पंजाबी तक के शब्दों का बहुत सुन्दर प्रयोग मिलता है। मीरा के पद गेय शैली पर आधारित हैं। उनमें सरसता, सरलता, ललित शब्दों का प्रयोग, उपमायों का प्रांजल व लावाण्यमय प्रयोग मिलता है।

मीरा बाई ने अन्य संत महात्माओं की तरह मनुष्य जन्म को ईश्वरीय देन माना है। यह देन रोज़–रोज़ प्राप्त नहीं होती इस सुअवसर की प्रप्ति से भव सागर पार करने का यत्न करना चाहिए। मीरा कहती हैः–

''दुर्लभ नर देही तमें तत्पर थाव
भव सागर तरवा ने बेसवा ने नाव'
मनखा जन्म पदारथ पायो,
ऐसी बहुर न आती'' (मी.सु.सिं, पृ0 753) (वही,पृ0 847)

आप अन्यत्र कहती हैं– मीरा कहती है कि हरि की भक्ति का यही अवसर है, परन्तु मनुष्य भक्ति की रीति नहीं जानता।

''मारे हरि भज्यानी छे बेला रे,
भेदु बिना कोने चाहिए''

मीरा अपने पदों में चौरासी लाख योनियों का भी उल्लेख करती हैं कि 'मैंने चौरासी लाख का चूड़ा अनेक बार पहना है, हर जन्म में अनेक पति पाए हैं, पर मेरा सच्चा पति गोविन्द ही है–

'लख चौरासी री चूडलो, पेर्यो मैं कई बार।
ओ तो पति देही को संगी, मो पति सिरजणहार।।
जनम जनम कीया पति केता, विषयां ते नर नार।
मैं ता राची रँगलु रंगी गोविन्द हरि भरतार। (वेही, 407)

गुरबाणी में पंचम पातशाह भी कहते हैंः–

लख चडरासीह जोनि सबाई। माणस कउ प्रभि दीई वडि आई।
इसु पउड़ी ते जो नर चूकै सो आइ जाइ दुखु पाइ दा।।
(श्री आदि ग्रन्थ म.5 पृ0 1075)

मीरा कहती है कि सतगुरु की शरण से ही जीव इस चौरासी लाख की योनियाँ से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। पर जीव इस सत्य से अनजान है और वह साधुओं की संगत नहीं करता और मनुष्य जन्म का अमोलक अवसर हाथ से गँवा देता हैः–

'राम नाम बिन मुकति न पावै, फिर चौरासी जावै।
साध संगत में कबहूँ न जावै, मूरख जनम गँवावै।।
जन मीरा सतगुरु के सरणैं, जीव परमपद पावै।।
(मी. सु. सिं–240)

मीराबाई इस बात का बहुधा उल्लेख करती है कि सतगुरु के रूप में उन्हें रविदास मिल गए हैं और उन्होंने सतगुरु की कृपा से ही प्रभु की पहचान अथवा निशानी प्राप्त की है। अर्थात् प्रभु की प्राप्ति संभव हो सकी हैः–

'मीरा ने गोविन्द मिल्या जी, गुरु मिलिया रैदास।'
(मी. वृह. भाग–1 पृ0 201)

'गुरु रैदास मिले मों हि पूरे, धुर से कलम भिड़ी।
सतगुरु सैन दई जब आके, जोत में जोत रली।'
(मी. ब. शब्द , पृ031, पद 14)
'रैदास संत मिले मोहिं सतगुरु, दीन्हीं सुरत सहदानी'

श्री आदि ग्रन्थ में गुरु अर्जुन देव जी महाराज कहते हैंः–
'सतिगुरु हथि कुंजी होरतु दरु खुलै नाही,
गुरु पूरै भागि मिलावणिआ'
(आदिग्रन्थ पृष्ठ– 124)

गुरु साहिब का फरमान भी है कि परमात्मा से प्राप्ति की कुंजी अर्थात् भेद का उपाय सतगुरु के हाथ में है, उनके पास है, अन्य किसी के पास उस भेद को जानने की युक्ति नहीं। वह द्वार किसी दूसरे से नहीं खुल सकता और ऐसे पूर्व सतगुरु की प्राप्ति भाग्य से ही हो सकती है।

मीरा कहती हैः–
'हरि बिन रहयो न जाय, गुरां बिन तरियो न जाय'
(मी. सु. सिं पृष्ठ 196)

आप कहती हैं सतगुरू ने मुझे कृपा करके नाम का रतन प्रदान किया है, जो अमोलक वस्तु है, जिसका कोई मोल नहीं, वह सतगुरू ने कृपा और दया से ही प्रदान कर दी। वह अमोलक धन ऐसा है जिसे खरचा नहीं जा सकता, जिसे कोई चोर नहीं चुरा सकता बल्कि वह दिनों दिन सवाया होकर बढ़ता रहता है–

'पायो जी मैं राम रतन धन पायो।।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरू, किरपा कर अपनायो।
जनम जनम की पूँजी पाई, जग में सभी खोवायो
खरचै नहीं कोई चोर न लेवे, दिन दिन बढ़त सवायो।।
सत की नाव खेवटिया सतगुरू, भवसागर तर आयो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरख हरख जस गायो।।'
(मी. बा. शब्द., पृ0 24)

जब सतगुरू ने कृपा की तो मीरा की सुरत को गगन महल में जाने की राह मिल गई और मीरा कहती हैं कि वहां 'झिल मिलवारी ज्योति' को निहारा–

'सुरत उजाली खुल गई ताली।
गगन महल में जावन की।
झिलमिलवारी ज्योति निहारी
जैसे बिजली सावन की।''
(मी. सु. सिं. पृ0 381)

मीरा के एक पद में आत्मा–रूपी कन्या के विवाह का बहुत सुन्दर रूप में मिलता है। वधू इन्कार करती है कि वह किसी दूसरे का 'मींढल' नहीं पहनेगी। मींढल गुजराती भाषा में, विवाह के समय कन्या के हाथ में पहने जाने वाले कंघन को कहते हैं। जिसके धागे में मेवे पिरोए जाते हैं। आत्मा–रूपी वधू कहती है कि उसका अपने पिया जी (प्रभु) के साथ परिणय हो गया है वह उन्हीं का ही कंगन पहनती है। उसके गुरू ने उसके मुख पर ज्ञान का गुड़ यानि मीठा छुआया है, और प्रेम की वरमाला पहना दी है। गुरू देव से पवन रूपी यानि चंचल मन को बोध कर विवाह का मण्डप रचा है और तन का तोरण बनाया है। गुरू जी ने उसके हाथ में सत्य का कंगन ऐसा कसकर बांधा है कि उसे कोई छुड़ा नहीं सकता, धर्म की राह पर के यात्री साधु जन बहुत प्रसन्न है कि उसे ऐसा अमर पति मिला है। मीरा बाई कहती है कि मींढल यानि कंगन उसके प्रभु का उपहार है (विवाह के समय वधू के साथ दहेज रूप में जाने वाला उपहार)

''नहीं बांधु मींढल, बीजाना मींढल नहीं बांधु।
हुं तो परणी मारा पियु जी नी साथ।।
ज्ञान न गोल गुरूए मुख मांहि दीधो,
प्रेम नी घाली वरमाल।।
मन पवन नो गुरूए मांडवो बँधाण्यो,
तनड़ा न बांहया छे तोरण।।
सत्य नां कंकण मारा गुरू जी ए बाँहयाँ, एनो कोण छोडावनार।।
धर्म न धोरी मारां प्रसन्न जानैया, हुँ तो अमर पामी भरथार।।
बाई मीरा ने मींडल छे श्री रामनां, देजो तमे साधु चरणै वास।
(मीरा सुधा–सिंधु, पृ0 405)

जैसे सुनार सोने को खरा करने के लिए सख्त अग्नि में डालता है उसकी सारी मैल जल कर राख हो जाती है और भीतर से खरा कुन्दन निकाल लेता है। उसी प्रकार सतगुरू जीव को खरा मैल रहित करने के लिए विरह की अग्नि में तपाते हैं। मीरा बाई कहती हैं कि सतगुरू ने बिहर का बाण, बिरह का भाल ऐसा कस कर मारा है कि अन्तर बाहर व्याकुल हो गया है–

'री मेरे पार निकस गया, सतगुरू मारया तीर।
विरह–भाल लागी उर–अँतरि, व्याकुल भया सरीर।'
(मीरा वृहत्पदावली, पृ0 271)

बस जैसे विरह का असीम स्रोत फूट पड़ा हो, अपने प्रभु के दर्शनों के लिए व्याकुल मीरा विरह–व्यथा से बेचैन है, प्रतीक्षारत है, हृदय की पीड़ा किसी से कही नहीं जाती , मानो किसी ने करवत पर डाल दिया हो। निम्नलिखित मीरा के जनत–प्रसिद्ध पद है जो भारत के घर–घर में गाए जाते हैं–

'दरस बिन दूखन लागे नैन।
जबसे तुम बिछुड़े मोरे प्रभु जी , कबहु न पायो चैन।
शब्द सुनत मेरी मेरी छतियां कंपे, मीठे लागे बैन।।
एक टकटकी पंथ निहारूँ, भई छ–मासी रैन।
विरह विथां कासूँ कहुँ सजनी, बह गई करवत ऐन
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, दुख मेटन सब देन।''
(मीरा वृहत्पदावली पृ0 110)

प्रिय के वियोग में विरह की व्यथा को झेलती मीरा कहती है कि प्रिय के बिना उसे सेज भी सूली प्रतीत होती है, घायल की हालत उसकी पीड़ा को वही जान सकता है जिसने स्वयं घाव खाए हैं इसी तरह जौहर की गति को कोई जौहर ही जान सकता है। मध्यकालीन राजस्थान में जौहर की प्रथा प्रचलित थी, जिसमें जिन पत्नियों के पति देश पर युद्ध में कुर्बान हो जाते थे वे स्त्रियां बहुत बड़े अग्नि–कुण्ड में गिर कर प्राणहुति दे देती थी। मीरा उसकी पीड़ा का अनुभव करती कहती है कि जौहर हो गई सती की पीड़ा को कोई सती ही जानती है जिसमें वैसा जज़्बा है, वैसी उत्कंठा है। उसी तरह मीरा की पीड़ा को या मीरा जानती है या उसे पीड़ा देने वाला प्रियतम जानता है और उस दर्द की दवा भी उसी के पास है–

'हे री मैं तो प्रेम दिवानी, मेरो दरद न जाने कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, किस विध सोना होय।
गगन मण्डल में सेज पिया की, किस विध मिलना होय।
घायल की गति घायल जानै, की जिन लाई होय।
जौहर की गति जौहर जानै, की जिन जौहर होय।
दरद की मारी बन बन डोलूँ, बेद मिला नहीं कोय।
मीरां के प्रभु पीर मिटैगी, जब बैद साँवलिया होय'
(मीरा – व्यक्तित्व एवं कृतित्व पृ0 271)

हरि जीव को विरह की अग्नि में तपा कर निखारने के पश्चात अवश्य ही दर्शन देते हैं और जीव के जलते व्याकुल तनमन को शीतलता प्रदान करते है, उस आनंद का सुख जीव ब्यान नहीं कर सकता। मीरा बाई भी कहती हैं कि उनके प्रभु घर में अर्थात अन्तर मन में आकर प्रगट हो गए हैं और उनका रोम रोम उस आनन्द के पुलक से, शीलता से भर गया है, दर्द मिट गए हैं और उनका काम बन गया है–

म्हारा ओलगिया घर आया जी,
तन की ताप मिटी सुखी पाया, हिल-मिल मँगल गाया जी।।
**********
रग रग सीतल भई मेरी सजनी, हरि मेरे महल सिधाया जी।।
सभ भगतन का कारज कीन्हा सोई प्रभु मैं पाया जी।
मीरा बिरहणि सीतल होई, दुःख दुंद दूर नसाया जी।।
(मीरा वृहत्पदावली पृ0 190)

मीरा की भक्ति प्रेमाधारित है। प्रेम के मार्ग में वे तीर्थ, जप, तप, व्रत, स्नान, भोग, वैराग्य आदि को निरर्थक मानती है। उनका मानना है-

'कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हे, कहा लिय करवत कासी
(मीरा वृहत्पदावली पृ0 160)
'अड़सठ तीरथ भ्रमि भ्रमि आयो, मन ना हीं मानी हार ।।
(मीरा बृहत्पदावली पृ0 291)

न्हीं न्हावुं गंगा नहीं न्हावूं जंमुना। नहीं न्हावुं प्रयाग कासी।।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर। चरन कमल की प्यासी।।
(मीरा सुधा-सिंधु पृ0 815)

मीरा बाई का प्रेम सदैव उस अजर और अमर प्रभु के साथ अजर और अमर रहा। यहां तक कि विवाह के सात वर्ष के पश्चात् ही पति राजा भोजराज का स्वर्गवास हो गया जो भी तत्कालीन प्रथा के अनुसार मीरा सती नहीं हुई, क्योंकि वे स्वयं को सदा अजर-अमर प्रभु की चिर सुहागिनी मानती थी।-

'जग सुहाग मिथ्या री रजनी हाँवा हो मिट जासी
वरन कर्यां हरि अविनाशी म्हारो काल-व्याल न खासी।'
एवं
'अखंड वर ने वरी सहेली, हूँ तो अखंड वर ने वरी।'
(मीरा सुधा सिंधु- पृ0 384)

मीरा बाई द्वारा लिखित पूर्ण अथवा अपूर्ण रूप में जो रचनाएं प्राप्त होती हैं वे हैं- गीत गोविन्द का टीका, नरसी जी का मायरा (अथवा माहेरो) राग सोरठ का पद, राग गोविन्द मलार राज, मीरां की गरबी, रूकमणीमंगल, नरसी मेहता की हुण्डी, सफुट- पद आदि।

मीरा बाई की भक्ति की दृढ़ता का यह अति महत्त्वपूर्ण पद है, जो स्वयं मीरा और ऊदाबाई के बीच वार्तालाप के रूप में रचा गया है। इसमें ऊदाबाई मीराबाई को संत महात्माओं की सँगति त्यागने की सलाह देती है। उत्तर में मीरा बाई कहती हैं कि यह सद्मार्ग उन्हें उनके सद्गुरू के द्वारा दिखाया गया है और उन्होंने इसे अपने सिर की कीमत अदा करके प्राप्त किया है, अतः वे उसे छोड़ नहीं सकती ।

''..... यो मारग म्हाने नीठ मिल्या छे
सतगुरू दिया बताय।
माथा साटे धारण कीदो
कूँकर छोडया जाय।।
**********
भगति बिना ठुकराई झूठी
माने नहीं सुहाय।

राजपाट सब धरिया रेसी
जलसी जंगल भाय।।
**********
धन धन है मीरां बडभागन
हरिसू हेत लगाय।
बार बार म्हे करूँ बेनती
दुष्ट रया पछताय।
(मी. सु. सिं. पृ0 284)

मीरा बाई कहती है कि मैं तो निंदा और स्तुति दोनों से परे हूँ, और सब कुछ सहने को तैयार हूँ–

''कुल कू छाड़ि कडूंबो छांडयो, छांडी ममता माई।
और दुनियां को दांवौ छोड़यौ, छोड़ी लोभ बड़ाई।।
पर गल दोइ में पलो बिछायों, मन भावै ज्यूं कहीयौ।
यो जस मीरा बाई गावै, ज्यूं कहियौ ज्यौं सहियौ।। (मी.बृ.पृ0 125)

मीरां बाई के काव्य की भाषा मुख्यता राजस्थानी–मिश्रित ब्रज है। गुजराती भाषा का भी विशेष पुट है। मीरा के पद राग–रागिनियों में बद्ध है। संगीत और छंद–विधान की दृष्टि से भी काव्य उच्च–कोटि का है। मीरा का काव्य भावना प्रधान है इसलिए उसमें अलंकारों की सायास योजना दिखलाई नहीं पड़ती, अनुभूति के सहज प्रवाह में उपमा, रूपक उत्प्रेक्षा आदि अलंकार भी मिलते हैं।

## संदर्भिका

1. मीरा सुधा सिंधु, प्रकाशक : श्री मीरा प्रकाशन समिति, भीलवाडा राजस्थान, प्रथम संस्करण, 1957.
2. मीरा वृहत्पदावली, (प्रथम भाग) प्रकाशक : राजस्थान प्राच्यविधां प्रतिष्ठान, जोधपुर, प्रथम संस्करण, 1968.